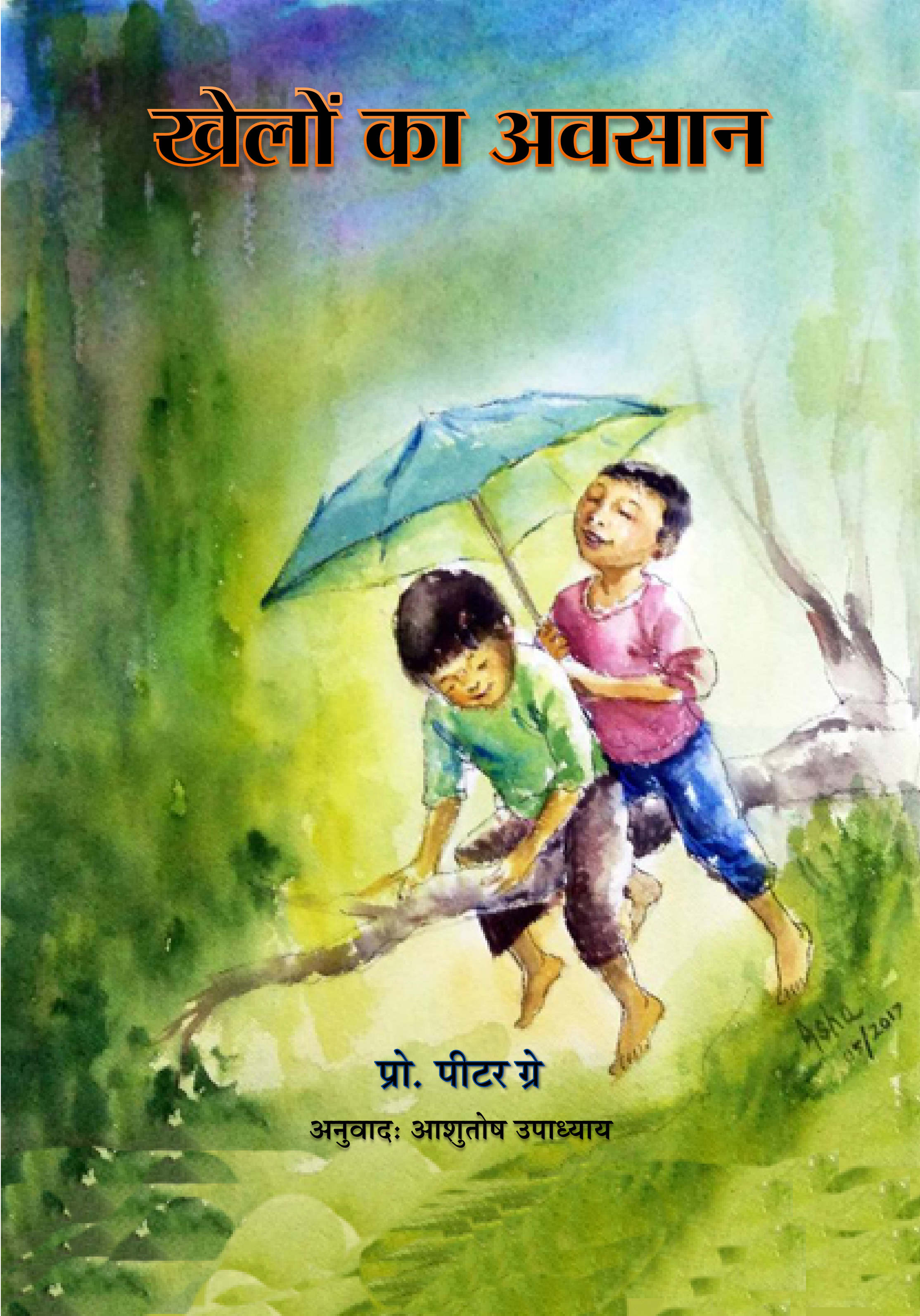
खेलों का अवसान



प्रो. पीटर ग्रे

अनुवादः आशुतोष उपाध्याय

खेलों का अवसान

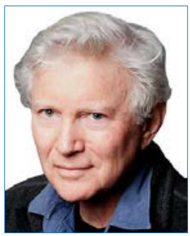
लेखकः प्रो. पीटर ग्रे

निःशुल्क वितरण हेतु ई.बुकः 2019

आवरणः "Rains and children Childhood joys," by ASudhaker S

सभी चित्र इंटरनेट से साभार

लेखक



प्रो. पीटर ग्रे

पीटर ग्रे, पीएच.डी. बोस्टन कॉलेज में रिसर्च प्रोफ़ेसर हैं और दो बेहद लोकप्रिय पुस्तकों- फ्री टू लर्न और साइकोलॉजी- के लेखक हैं. उन्हें तुलनात्मक, उद्‌विकास, विकास एवं शैक्षिक मनोविज्ञान में शोध का विषद अनुभव है. प्रो. ग्रे ने कोलंबिया विश्वविद्यालय से स्नातक शिक्षा पूरी करने के बाद रॉकफैलर विश्वविद्यालय से जीवविज्ञान में पीएच.डी. की डिग्री हासिल की. फिलहाल वे लम्बे समय से बच्चों की सीखने की सजह वृत्ति और खेलों के शैक्षिक मूल्य पर काम कर रहे हैं. शोध के अलावा उन्हें साइकिल चलाने, नौकायन, स्कीइंग और खेती करने का शौक़ है.



मैं एक शोधकर्ता हूं और मैंने जैविक व उद्विकास के नज़रिए से खेल का अध्ययन किया है. मेरी दिलचस्पी यह जानने में रही है कि प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के दौरान खेल क्यों अस्तित्व में आया. मेरी रुचि जैविक विकास में खेल की भूमिका को समझने में थी. इसलिए मैं अपनी बात की शुरुआत जानवरों से करूंगा.

सभी प्रमुख स्तनधारी प्रजातियों के शावक खेलते हैं. खेल से वे अपने शरीर का विकास करते हैं. इसके ज़रिए वे उन शारीरिक कौशलों का अभ्यास करते हैं, जो उनकी जीवन रक्षा के लिए ज़रूरी हैं. खेलों से वे सामाजिक व भावनात्मक कौशलों का भी अभ्यास करते हैं. खेलते हुए वे एक-दूसरे के साथ सहयोग करना सीखते हैं. बगैर आपा खोए एक-दूसरे के बेहद क़रीब रहना सीखते हैं- यह सीख सामाजिक रूप से रहने वाले जानवरों के लिए बेहद ज़रूरी है. दुस्साहसिक खेलों को खेलते हुए वे ख़तरा मोल लेना सीखते हैं ताकि बिना जान गंवाए डर का अनुभव कर सकें. यह एक ऐसा सबक है जो वास्तविक आपत्ति में जान बचाने के काम आता है.

शोधकर्ताओं ने इस सिलसिले में प्रयोगशाला के भीतर कई प्रयोग किए हैं. इन प्रयोगों में जानवरों के बच्चों को वयस्क होने के दौरान खेलों से वंचित रखा जाता है. ऐसे प्रयोग अमूमन चूहों पर किए जाते हैं लेकिन

कभी-कभी बंदरों को भी इनमें शामिल किया जाता है. वैज्ञानिकों ने ऐसे तरीक़े खोजे हैं, जिनमें इन जानवरों के अन्य सामाजित अनुभवों से छेड़-छाड़ किए बिना उन्हें मात्र खेलों से दूर रखा जाना संभव होता है. कम से कम चूहों के साथ ऐसा करने के अच्छे तरीक़े खोजे गए हैं. परिणाम यह निकला कि बड़े होने पर ये जानवर सामाजिक और भावनात्मक तौर पर अपंग पाए गए. जब आप खेल के अनुभवों से वंचित इन जानवरों में से किसी एक को नए या थोड़ा डरावने माहौल में रखते हैं तो वह ज़रूरत से ज्यादा डर जाता हैः वह एक कोने में जाकर जड़ हो जाता है, वह नई परिस्थितियों में ढल नहीं पाता और न ही अपने सामान्य सहोदर की तरह नए परिवेश को समझने का प्रयास करता है. अगर आप खेलों से वंचित ऐसे एक जानवर को उसके किसी अपरिचित बांधव के नज़दीक ले जाएंगे तो पहले वह डर से जड़वत हो जाएगा और फिर प्रभावहीन आक्रामकता दिखाएगा. ऐसे जानवर दूसरे जानवर के सामाजिक संकेतों के जवाब में प्रतिक्रिया देना नहीं सीख पाते हैं. यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वे स्तनधारी जिनके पास सबसे बड़ा दिमाग़ है और जिन्हें सबसे ज्यादा सीखना पड़ता है, वही सबसे ज्यादा खेलते हुए पाए जाते हैं. यह इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि इंसानी बच्चे, जब भी उन्हें मौक़ा मिलता है, अन्य सभी स्तनधारियों के बच्चों की तुलना में कहीं ज्यादा खेलते हैं.

बच्चों की स्व-शिक्षण क्षमता

कुछ वर्ष पहले अपने एक शोधछात्र के साथ मिलकर मैंने ऐसे मानवशास्त्रियों पर एक सर्वेक्षण किया, जिन्होंने दुनिया के दूर-दराज हिस्सों में बसी शिकारी संग्राहक संस्कृतियों पर काम किया है. हमने इन संस्कृतियों के बच्चों के बीच प्रचलित खेलों के बारे में उनसे जानकारी मांगी. सभी 10 मानवशास्त्रियों ने, जिनसे तीन महाद्वीपों के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाले शिकारी संग्राहक समाज के बच्चों और उनके खेलों

के बारे में सवाल पूछे गए थे, हमें बताया कि इन समाजों में बच्चों और नौउम्र किशोरों को खेलने व खोजने की पूरी आज़ादी रहती है और वे पूरे दिन सुबह से शाम तक किसी भी क़िस्म की वयस्क निगरानी में नहीं रहते. जब इन समाजों के वयस्कों से इस बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा, **''उन्हें खेलने के लिए छोड़ना ज़रूरी है, तभी तो वे सारे हुनर सीख पाएंगे जिनकी वयस्क होने पर उन्हें ज़रूरत पड़ेगी.''**

इनमें से कुछ मानवशास्त्रियों ने हमें बताया कि इन संस्कृतियों के जिन बच्चों का उन्होंने अध्ययन किया, उन्हें अब तक कहीं भी देखे बच्चों में सबसे प्रखर, प्रसन्न, सहयोगी, मिलनसार और सबसे ज्यादा सख़्तजान पाया. जैविक उद्विकास के नज़रिए से देखा जाय तो खेल प्रकृति का वह माध्यम है जो इंसानी बच्चों समेत सभी कम उम्र स्तनधारियों में सुनिश्चित करता है कि उन्हें ऐसे तमाम हुनर हासिल हों, जो वयस्क के रूप में उन्हें सफलतापूर्वक तैयार करें. धार्मिक दृष्टि से देखें तो हम कह सकते हैं कि खेल ईश्वर का वह तोहफ़ा है जिसने धरती में जीवन को उपयोगी बनाया है.

खेलों का अवसान

अब एक अफ़सोसनाक ख़बर! यही वह बात है जिसे सुनाने के लिए यहां हूं. पिछले 50-60 वर्षों के दौरान हमने धीरे-धीरे क़ुदरत के इस तोहफ़े को परे धकेलना शुरू किया है. इस आधी सदी के दौरान बच्चों की आज़ादी और खेलने के मौक़ों में लगातार कमी आई है. अब वे पहले की तरह वास्तव में पूरी आज़ादी के साथ नहीं खेल पाते हैं. इतिहासकारों और समाज विज्ञानियों ने अलग-अलग ढंग से इस बात को रेखांकित किया है और ख़ुद अपनी लम्बी उम्र के दौरान मैंने इस बात को अपने जीवन में घटित होते हुए देखा है.

1950 के दशक में, जब मैं बच्चा था, हमारे पास खेलने के भरपूर मौक़े हुआ करते थे. हम स्कूल भी जाते थे लेकिन तब वे आज की तरह

बंदिशों वाले नहीं थे. कुछ लोगों को अब शायद याद नहीं होगा, स्कूल का वार्षिक सत्र तब आज की तुलना में पांच हफ़्ते छोटा होता था. स्कूल दिन में छः घंटे चलता था लेकिन प्राथमिक पाठशाला में इनमें से दो घंटे बाहर खेलने के लिए मिलते थे. आधे घंटे की छुट्टी सुबह, आधे घंटे की दोपहर में और पूरे एक घंटे की दोपहर के भोजन के समय. इन छुट्टियों में हम अपनी मर्ज़ी के मालिक थे. हम जहां चाहें वहां जा सकते थे. हम एक बार में एक घंटे से ज्यादा कक्षा के भीतर नहीं रहते थे और पूरे दिन चार घंटे से ज्यादा नहीं रहते थे. इतनी पढ़ाई कोई बड़ी बात नहीं थी. और प्राथमिक कक्षाओं में किसी ने होमवर्क का नाम नहीं सुना था. हाईस्कूल के विद्यार्थियों को ज़रूर होमवर्क मिलता था लेकिन वह आज की तुलना में बहुत कम था. स्कूल से बाहर हमारे पास बहुत सारे काम थे- हममें से कुछ पार्ट टाइम नौकरी करते थे, लेकिन ज्यादातर समय हम खेलने-कूदने के लिए आज़ाद थे. स्कूल की छुट्टी के बाद कुछ घंटे और साप्ताहिक छुट्टी को पूरा दिन. गर्मियों की सारी छुट्टियां खेलों में ही बीतती थीं.

मैं यह कहना चाहूंगा कि जब मैं बच्चा था, तब मेरे पास स्कूल था और साथ में शिकारी-संग्राहकों की शिक्षा भी थी. उन दिनों आप अमेरिका में अपने आस-पड़ोस कहीं भी घूमने निकलते और अगर स्कूल का सत्र नहीं चल रहा होता तो आपको हर जगह बच्चों के झुण्ड घर के आसपास किसी बड़े की देखरेख के बिना खेलते-कूदते दिखाई पड़ते थे.

लेकिन आज अगर आप अमेरिका में कहीं भी चले जाएं तो आप क्या देखते हैं? यही कि अगर बाहर कहीं बच्चे दिखे भी तो वे अपनी स्कूल की यूनिफॉर्म में होंगे या किसी तराशे हुए मैदान में होंगे और किसी न किसी वयस्क कोच के दिशा-निर्देशों का पालन कर रहे होंगे. उनके माता-पिता मैदान के किनारे पर बैठे उनकी हर हरकत पर उनका उत्साहवर्धन कर रहे होंगे. कभी-कभी हम इसे खेल कहते हैं लेकिन खेलों पर शोध करने वाले ऐसा नहीं मानते. यह वास्तव में खेल नहीं है. **खेल, अपनी परिभाषा में**

ही, स्व-नियंत्रित और स्व-निर्देशित होता है, खेल का यह स्व-निर्देशित पहलू ही इसे इसकी सिखाने की क्षमता प्रदान करता है.

स्कूली नजरिए का विस्तार

आइए अब उन कारणों की ओर जाएं जिनकी वजह से खेलों का ह्रास हुआ. पहला कारण, बेशक स्कूल का लगातार बढ़ता बोझ है. लेकिन इससे भी बड़ा कारण, मेरे ख़याल से पहले से भी बड़ा और महत्वपूर्ण कारक जो खेलों के ह्रास के लिए जिम्मेदार है- वह है **स्कूल की चारदीवारी के बाहर बच्चों की परवरिश के उस नज़रिए का विस्तार जिसे मैं स्कूली नज़रिया कहता हूं.** इस नज़रिए के मुताबिक बच्चे हर चीज़ बड़ों से ही सबसे अच्छी तरह सीखते हैं. बच्चों की दूसरे बच्चों के साथ की जाने वाली स्व-निर्देशित गतिविधियां समय की बर्बादी है.

इस बात को हम अमूमन इसी तरह नहीं कहते, लेकिन बच्चों से सम्बंधित हमारी नीतियों में यह समझ अन्तर्निहित होती है. इस तरह अब बचपन आज़ाद समय से करियर निर्माण काल में रूपांतरित हो गया. दूसरे कारण का सम्बंध भय के विस्तार से है. यकीनन एक तरह का अतार्किक भय, जो मीडिया और विशेषज्ञों द्वारा फैलाया जाता है. ये लोग लगातार चेताते रहते हैं कि बाहर ख़तरा है और हमने अगर अपने बच्चों से एक मिनट को भी नज़र फेरी तो वे बाहर निकल जाएंगे.

बहुत से लोग इस अतिरंजित भय के बेतुकेपन को समझते है, इसके बावजूद जब यह हमारे सर पर सीधे गिराया जाता है तो उसे झटककर झाड़ देना बहुत मुश्किल हो जाता है. ऐसे बहुत सारे अभिभावकों को मैं जानता हूं जो अपने बच्चों का घर से बाहर खेलना पसंद करते हैं और वे सोचते भी हैं कि ऐसा करना बहुत अच्छा होगा लेकिन भय का भूत उनका पीछा नहीं छोड़ता. इसके अलावा खेल का ह्रास स्वयं एक समस्या पैदा कर देता

है. जब बाहर खेल में साथ देने वाले बच्चों कि संख्या घट जाती है तो बाहर जाकर खेलने का आकर्षण भी ख़त्म हो जाता है.

और ऐसे में बाहर की दुनिया थोड़ी कम सुरक्षित हो जाती है. इसलिए जो बच्चा बाहर खेलने के लिए जाता है, वहां किसी को न पाकर वापस घर के भीतर जाता है. मैं 1950 के दशक को कोई रूमानी रंग नहीं देना चाहता लेकिन यह ज़रूर कहना चाहूंगा कि आज हम बेशक कई मामलों उस ज़माने से बेहतर दुनिया में रहते हैं लेकिन बच्चों के लिए हमने कहीं ज्यादा खराब दुनिया बना डाली है.

जिन दशकों के दौरान खेलों का लगातार ह्रास हुआ, हमने बच्चों में तमाम किस्म के मानसिक विकारों को पैदा होते हुए देखा है. इस बात के पुख्ता प्रमाण मानक चिकित्सकीय मूल्यांकन प्रश्नावलियों के जवाब में मिलते हैं. ये मूल्यांकन बताते हैं कि 1950 के दशक की तुलना में आज पांच से आठ प्रतिशत ज्यादा बच्चे किसी न किसी गहरे अवसाद या कठिन दुश्चिंता विकार से पीड़ित हैं. और यह प्रवृत्ति साल दर साल लगातार और करीब-करीब एक जैसी गति से बढ़ती देखी गयी है. ठीक इसी काल में हम 15 से 24 वर्ष के बच्चों में आत्महत्या दर को दोगुना होते देख रहे हैं. यही नहीं, 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में आत्महत्या की दर चार गुना बढ़ गई है जबकि इसी कालखंड में मेरी उम्र के लोगों में आत्महत्या की दर में उल्लेखनीय कमी आई है.

बच्चों की त्रासद दुनिया

हमने बच्चों के लिए एक खराब दुनिया बना डाली है, जो ज़रूरी नहीं कि बड़ों के लिए भी उतनी ही खराब हो और हो सकता है कि हम जैसे बूढ़ों के लिए तो थोड़ी बेहतर हो. हमने बच्चों के भीतर उस अहसास को सिमटते हुए देखा है कि उनके खुद के जीवन पर उनका अपना नियंत्रण है.

एक प्रश्नावली है जिसे नियंत्रण पैमाने का आतंरिक-बाह्य बिंदु कहा जाता है. बच्चों व बड़ों के लिए इसके अलग-अलग संस्करण हैं. 1960 से इसका इस्तेमाल हो रहा है. जब से यह प्रयोग में लाया जा रहा है, हम बच्चों और किशोरों के उनके खुद के जीवन में नियंत्रण को लगातार कम होते हुए देख रहे हैं. उनके मन में यह धारणा बैठती जा रहा है कि उनका जीवन नियति पर, परिस्थितियों पर और दूसरे लोगों के फ़ैसलों पर निर्भर है. चिंता और अवसाद से रिश्ते के मामले में इस बात का बड़ा महत्त्व है क्योंकि चिकित्सकीय मनोवैज्ञानिक यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि खुद पर नियंत्रण का अहसास न होना चिंता व अवसाद को जन्म देता है.

इससे भी बुरी ख़बर; हाल के वर्षों में हमें देखा है कि 1980 के बाद की प्रश्नावलियों के जवाब इस बात की पुष्टि करते हैं कि नौजवानों में आत्ममुग्धता की प्रवृत्ति में बढ़ोतरी हुई है और समानुभूति में कमी आई है. और सृजनशीलता पर बिलकुल हाल के अध्ययन बताते हैं कि 1980 दशक के मध्य से बच्चों व सभी स्तर के स्कूली विद्यार्थियों के रचनात्मक सोच में लगातार गिरावट दिखाई देती है. बेशक, कोई भी समाजविज्ञानी आपसे कहेगा कि अन्योनाश्रय सम्बंध कार्य-कारण को सिद्ध नहीं करते. लेकिन इस मामले में यह मान लेने के भरपूर प्रमाण है कि खेल का ह्रास इन धातक बदलावों की वजह है. एक बात पर यह पारस्परिक सम्बंध बहुत स्पष्ट है, ख़ास तौर पर 1955 से शुरू होकर आज तक लगातार एक गति से हो रहे खेल के ह्रास और उसी एक सामान गति से युवाओं में बढ़ रहे चिंता और अवसाद के लक्षणों के बीच.

ऐसा अंतरसम्बंध आर्थिक चक्र और युद्धों जैसे मामलों के साथ नहीं दिखाई देता. आज बच्चे महामंदी के दौर से भी ज्यादा अवसादग्रस्त हैं. वे शीतयुद्ध के उन डरावने दिनों से भी ज्यादा चिंतित दिखाई देते हैं, जब उन्हें लगातार परमाणु संहार के आसन्न खतरे की चेतावनी दी जाती थी.

इसके साथ-साथ, खेल हमें बताता है कि यही वे प्रभाव हैं, जिनकी हमें बच्चों को खेल से वंचित कर देने पर अपेक्षा करनी चाहिए. इस प्रकार के प्रभाव हमें जानवरों में दिखाई देते हैं जब हम उन्हें खेलों से दूर कर देते हैं. यह खेल ही है जो बच्चों को अहसास दिलाता है कि वे अपने जीवन को ख़ुद नियंत्रित कर रहे हैं. यह वह मौक़ा है जब वे अपनी जीवन की बागडोर ख़ुद थाम लेते हैं. जब यह डोर बड़े छीन लेते हैं, तो वे बच्चों से अपने जीवन को नियंत्रित करने के तरीकों को सीखने के मौक़े छीन लेते हैं. **खेल वह जगह है जहां बच्चे अपनी समस्याओं को ख़ुद हल करना सीखते हैं और यह जान पाते हैं कि दुनिया इतनी भी डरावनी नहीं है.** खेल वह जगह है जहां वे ख़ुशी का अनुभव करते हैं और यह जान पाते हैं कि दुनिया इतनी भी अवसादपूर्ण नहीं है. खेल वह जगह है जहां वे अपने हमजोलियों के साथ चलना और दूसरों के दृष्टिकोण को इज्ज़त देना सीखते हैं, समानुभूति का अभ्यास करते हैं व आत्ममुग्धता से निजात पाते हैं.

खेल अपनी परिभाषा से ही सृजनात्मक और अभिनव होता है. बेशक यदि आप खेल को छीन लेंगे तो ये सारी चीज़ें ग़ायब होनी शुरू हो जाएंगी. और फिर भी हर जगह हमें पहले से ज्यादा स्कूल और पहले से कम खेल-कूद का ही शोर सुनाई देता है. और हमें इसे बदलना होगा, हर हाल में बदलना होगा.

स्कूल की घुसपैठ को रोकना होगा

तो, मुझे बताया गया कि अपनी बात हमेशा सकारात्मक सुर पर समाप्त करनी चाहिए. मैं इस मंच का अकेला अवसादी वक्ता नहीं बनना चाहता. इसलिए, मैं कहना चाहता हूं: ''आइए, स्वीकार करें कि हमसे गलती हुई है. हम ही इस दुनिया के बच्चों के लिए ऐसा कर बैठे हैं.'' तो इस बात को स्वीकार करने के साथ शुरुआत करें. लेकिन इसके बाद हम कहें, ''हमें

इसके लिए कुछ न कुछ ज़रूर करना चाहिए.'' पहली बात जो हमें मान लेनी चाहिए कि यह एक समस्या है. एक बार जब हम किसी बात को एक समस्या के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, तो उसके निराकरण के उपाय भी खोजने लगते हैं. हमारे पास नियंत्रण की एक आन्तरिक समझ होनी चाहिए और समझना चाहिए कि हम इस समस्या को हल कर सकते हैं.

हमें अपनी प्राथमिकताओं की जांच-पड़ताल से शुरुआत करती चाहिए. हम अपने बच्चों से वास्तव में चाहते क्या हैं? और अपनी इच्छाओं को हम कैसे हासिल करते हैं? हमें अपने पड़ोसियों से जान-पहचान बढ़ानी होगी, आस-पड़ोस का नेटवर्क तैयार करना होगा, क्योंकि आस-पड़ोस से ही बच्चे दोस्त बनाते हैं और खेल के अपने संगी-साथियों को तैयार करते हैं. **अपने पड़ोसियों से जान-पहचान बढ़ाकर ही हम आश्वस्त हो सकते हैं कि पड़ोस ही आखिरकार खेलने की सबसे सुरक्षित जगह है.** एक बार जब हम अपने पड़ोसी को जान जाते हैं तो समझ पाते हैं कि वह हमारे बच्चों के लिए इतना भी बुरा नहीं है.

हमें बच्चों के खेलने की जगहों को भी फिर से स्थापित करना होगा. वे एक तरह से विलुप्त हो गई हैं. हमने पगडंडियों को हड़प लिया है. स्कूल के बाद खेलने के लिए हमें जिम्नेज़ियम और स्कूल जिम्नेज़ियम को खुलवाने के इंतजाम करने चाहिए. कुछ इस तरह की व्यवस्था करनी चाहिए कि पार्कों में कोई सुपरवाइज़र तैनात हो ताकि माता-पिता वहां अपने बच्चों को छोड़कर निश्चिन्त हो सकें. ऐसा सुपरवाइजर जो बच्चों की सुरक्षा की समझ रखता हो लेकिन उनके खेल में दख़ल नहीं देता हो.

हमें कुछ इस तरह के कदम उठाने की ज़रूरत हैः कुछ निर्धारित घंटों के लिए शहर की सड़कों को बंद कर देना चाहिए ताकि बच्चे उन पर कब्ज़ा जमाएं और खेल सकें. हमें दुस्साहसिक खेलों के मैदान विकसित करने चाहिए जैसे यूरोप में आम तौर पर पाए जाते हैं.

और शायद, सबसे ऊपर, हमें थोड़ा और साहसी होने की ज़रूरत है ताकि बच्चों के जीवन में स्कूल की लगातार बढ़ती घुसपैठ के ख़िलाफ़ खड़े हो सकें. हमारे बच्चों को स्कूलों की और ज़्यादा दख़लअंदाज़ी की ज़रूरत नहीं है. उनके जीवन में स्कूल का दख़ल कम होना चाहिए. बेशक उन्हें बेहतर स्कूल चाहिए लेकिन ज़्यादा स्कूल नहीं. इसके साथ मैं अपनी बात समाप्त करता हूं और यहां आने के लिए आप सब का धन्यवाद करता हूं. मेरा आशीष आप सब के साथ है और मैं उम्मीद करता हूं कि आप अपने आस-पड़ोस के और दुनियाभर के बच्चों के लिए खेलों की वापसी की खातिर कोई कसर नहीं छोड़ेंगे.

धन्यवाद.

* * *